

Chapter उन्तीस

भक्ति-योग

यह सोच कर कि इसके पूर्व वर्णित की गई वैराग्य पर आधारित आध्यात्मिक विधि अत्यन्त कठिन है, उद्धव ने कुछ सरल विधि के विषय में जिज्ञासा की। उत्तर में, भगवान् श्रीकृष्ण ने भक्ति के विषय में संक्षिप्त आदेश दिये।

सकाम कर्मी तथा योगीजन भगवान् की माया से विमोहित होने के कारण तथा अपनी झूठी पहचानों से गर्वित होने के कारण, भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने से इनकार करते हैं। किन्तु सार तथा असार में भेद जानने वाले हंसवत् व्यक्ति सदैव भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं। भगवान् चैत्यगुरु के रूप में जीव के भीतर से और उदाहरणों के द्वारा शिक्षा देने वाले गुरु के रूप में बाहर से, आत्मा के सारे दुर्भाग्य को दूर करता है और अपने साकार रूप को प्रकट करता है।

मनुष्य को चाहिए कि अपने मन को भगवान् में लीन करके सारे कर्म भगवान् के लिए ही करे।

उसे भगवान् के पवित्र धाम का, जहाँ उनके भक्तगण निवास करते हैं, लाभ उठाना चाहिए और भगवान् की सेवा करनी चाहिए तथा उनके सम्मान में उत्सवों-पर्वों का आयोजन करना चाहिए। सारे जीवों को कृष्ण का आवास स्थान समझते हुए मनुष्य को चाहिए कि सर्वत्र समभाव से देखने की सामर्थ्य प्राप्त करे। इस तरह ईर्ष्या, मिथ्या अहंकार जैसे दुर्गुण दूर हो जायेंगे। इसे मन में रखते हुए भक्त को चाहिए कि वह अपने घमंडी सम्बन्धियों, अपने विलगाववादी दृष्टिकोण तथा सांसारिक उलझनों को त्याग दे और सबों को, यहाँ तक कि कुत्तों तथा चांडालों को भी, दण्ड-प्रणाम करे। जब तक वह सारे प्राणियों में भगवान् की उपस्थिति देखने का अभ्यास नहीं कर लेता, तब तक उसे चाहिए कि वह अपने शरीर, मन तथा वाणी का उपयोग भगवान् की पूजा करने में करे और सबों को नमस्कार करे।

चूँकि भगवान् की भक्ति की यह शाश्वत विधि दिव्य है और स्वयं भगवान् द्वारा स्थापित की गई है, इसलिए यह लेशमात्र भी न तो कभी परास्त हो सकती है न ही निष्फल सिद्ध होगी। जब मनुष्य अनन्य भक्ति द्वारा अपने को भगवान् को अर्पित कर देता है, तो भगवान् विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं और इस तरह भक्त अमरता प्राप्त करता है और भगवान् के ही समान ऐश्वर्य पाने का अधिकारी बन जाता है।

इन आदेशों को पाकर श्री उद्धव, भगवान् के निर्देश का पालन करने के लिए बदरिकाश्रम गये और भगवान् के आदेशों को पूरी तरह सम्पन्न करने के फलस्वरूप उन्होंने भगवान् का दिव्य धाम प्राप्त किया। भगवान् द्वारा महानतम् भक्त उद्धव से कहे गये इन आदेशों का श्रद्धापूर्वक पालन करने से सम्पूर्ण जगत मुक्त हो सकता है।

श्रीउद्धव उवाच

सुदुस्तरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ।

यथाञ्जसा पुमान्सिद्धयेत्तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; सु-दुस्तराम्—पूरा कर पाना अत्यन्त कठिन; इमाम्—यह; मन्ये—मैं सोचता हूँ; योग-चर्याम्—योग-विधि; अनात्मनः—जिसने अपने मन को वश में नहीं किया, उसके लिए; यथा—कैसे; अञ्जसा—आसानी से; पुमान्—पुरुष; सिद्धयेत्—पूरा करे; तत्—वह; मे—मुझसे; ब्रूहि—कृपया कहें; अञ्जसा—सरल ढंग से; अच्युत—हे अच्युत भगवान्।

श्री उद्धव ने कहा : हे भगवान् अच्युत, मुझे भय है कि आपके द्वारा वर्णित योग-विधि उस व्यक्ति के लिए अत्यन्त कठिन है, जो अपने मन को वश में नहीं रख सकता। इसलिए आप सरल शब्दों में यह बतलायें कि कोई व्यक्ति किस तरह इसे अधिक आसानी से सम्पन्न कर सकता है।

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युज्यन्तो योगिनो मनः ।
विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्षिताः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

प्रायशः—अधिकांशतः; पुण्डरीक-अक्ष—हे कमलनेत्र भगवान्; युज्यन्तः—प्रवृत्त होने वाले; योगिनः—योगीजन; मनः—मन; विषीदन्ति—हताश हो जाते हैं; असमाधानात्—समाधि प्राप्त करने में अक्षमता के कारण; मनः-निग्रह—मन को दमन करने के प्रयास द्वारा; कर्षिताः—थके हुए।

हे कमलनयन भगवान्, सामान्यतया जो योगीजन मन को स्थिर करने का प्रयास करते हैं, उन्हें समाधि की दशा पूर्ण कर पाने की अपनी अक्षमता के कारण, निराशा का अनुभव करना पड़ता है। इस तरह वे मन को अपने वश में लाने के प्रयास में उकता जाते हैं।

तात्पर्य : भगवान् की शरण के बिना, योगी ब्रह्म में अपना मन स्थिर करने के कठिन कार्य से शीघ्र ही निरुत्साहित हो जाता है।

अथात आनन्ददुग्धं पदाम्बुजं

हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ।

सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभि-

स्त्वन्माययामी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अथ—अब; अतः—इसलिए; आनन्द-दुग्धम्—सारे आनन्द का स्रोत; पद-अम्बुजम्—आपके चरणकमल; हंसाः—हंस जैसे व्यक्ति; श्रयेरन्—शरण लेते हैं; अरविन्द-लोचन—हे कमलनेत्र; सुखम्—सुखपूर्वक; नु—निस्सन्देह; विश्व-ईश्वर—ब्रह्माण्ड के स्वामी; योग-कर्मभिः—योग तथा सकाम कर्म करने से; त्वत्-मायया—आपकी भौतिक शक्ति से; अमी—ये; विहताः—पराजित; न—नहीं (शरण लेते); मानिनः—झूठे ही गर्व करने वाले।

इसलिए हे कमलनयन ब्रह्माण्ड के स्वामी, हंस सदृश व्यक्ति खुशी-खुशी आपके उन चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, जो समस्त दिव्य आनन्द के स्रोत हैं। किन्तु जिन्हें अपने योग तथा कर्म की उपलब्धियों पर गर्व है, वे आपकी शरण में नहीं आ पाते और आपकी मायाशक्ति द्वारा परास्त होते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर श्री उद्धव बलपूर्वक कहते हैं कि मात्र भगवान् की शरण ग्रहण करने से आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। जो ऐसा करते हैं, वे हंस कहलाते हैं। वे मनुष्यों में सर्वाधिक विवेकवान् होते हैं क्योंकि वे आध्यात्मिक सुख के असली स्रोत, भगवान् के चरणकमलों को, खोज लेने में समर्थ होते हैं। योग-कर्मभिः शब्द सूचित करता है कि जो लोग योग या सामान्य

भौतिक उद्योग के क्षेत्र में की गई उपलब्धि पर गर्व करते हैं या उसकी ओर आकृष्ट होते हैं, वे भगवान् की आज्ञापूर्वक शरणागति से होने वाले महान् लाभ को नहीं समझ पाते। सामान्यतया सकाम कर्मी तथा योगी अपनी अपनी तथाकथित उपलब्धियों पर गर्वित रहते हैं और वे भगवान् की अपेक्षा अपने प्रयास की ओर अधिक आकृष्ट रहते हैं। भगवान् कृष्ण की दीनतापूर्वक शरण ग्रहण करके कृष्णभावनामृत के मार्ग पर आसानी से और तेजी से अग्रसर हुआ जा सकता है और भगवद्धाम जाया जा सकता है।

किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो

दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ।

योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां

श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; चित्रम्—आश्चर्य; अच्युत—हे अच्युत प्रभु; तव—तुम्हारा; एतत्—यह; अशेष-बन्धो—हे सबों के मित्र; दासेषु—सेवकों के लिए; अनन्य-शरणेषु—जिन्होंने अन्य शरण नहीं ग्रहण की; यत्—जो; आत्म-सात्त्वम्—आपसे घनिष्ठता; यः—जिसने; अरोचयत्—स्नेहपूर्वक कार्य किया; सह—साथ; मृगैः—पशुओं (बन्दरों) के; स्वयम्—स्वयं; ईश्वराणाम्—महान् देवताओं के; श्रीमत्—ऐश्वर्यशाली; किरीट—मुकुटों के; तट—किनारों से; पीडित—हिलाया; पाद-पीठः—पीड़ा।

हे अच्युत प्रभु, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आप अपने उन सेवकों के पास घनिष्ठतापूर्वक जाते हैं जिन्होंने एकमात्र आपकी शरण ले रखी है। जब आप भगवान् रामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए थे, उस अवधि में ब्रह्मा जैसे महान् देवता आपके पादपीठ पर अपने मुकुट के ऐश्वर्यशाली सिरे रखने के लिए लालायित रहते थे; तब आपने हनुमान जैसे बन्दरों पर विशेष स्नेह प्रदर्शित किया क्योंकि उन्होंने एकमात्र आपकी शरण ले रखी थी।

तात्पर्य : भगवद्भक्त भगवान् की अहैतुकी कृपा से पूर्ण सफल होते हैं। कभी कभी भगवान् कृष्ण अपने महान् भक्तों, यथा नन्द महाराज, गोपियों, बलि महाराज आदि, के अधीन पद को स्वीकार करते हैं। यद्यपि ब्रह्मा जैसे देवता अपने अपने मुकुटों को भगवान् के पादपीठ पर छुआने के लिए पंक्तिबद्ध खड़े हुए थे, फिर भी भगवान् रामचन्द्र ने अपनी घनिष्ठ मित्रता हनुमान जैसे बन्दरों को प्रदान की थी। इसी तरह भगवान् कृष्ण का हिरनों तथा गौवों से, यहाँ तक कि वृन्दावन के वृक्षों से, स्नेह सुविख्यात है। अपरंच, भगवान् ने प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन का रथ हाँका और राजा युधिष्ठिर के दूत और आज्ञाकारी कर्मचारी का कार्य किया। ऐसे भक्तों को योग-शक्तियाँ पाने के लिए ज्ञानयोग की विस्तृत विधि की आवश्यकता नहीं रह जाती। यहाँ पर इन सारे भक्तों के प्रतिनिधि श्री उद्धव हैं, जो भगवान् से साफ

साफ कह देते हैं कि दार्शनिक चिन्तन तथा योग जैसी जटिल विधियाँ उस व्यक्ति को आकर्षक नहीं प्रतीत होतीं जिसे भगवान् की प्रत्यक्ष प्रेमाभक्ति का आस्वाद प्राप्त हो चुका है।

तं त्वाखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां
 सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ।
 को वा भजेत् किमपि विस्मृतयेऽनु भूत्यै
 किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; त्वा—तुम; अखिल—समस्त; आत्म—परमात्मा का; दयित—अत्यन्त प्रिय; ईश्वरम्—तथा परम नियन्ता;
 आश्रितानाम्—आपकी शरण ग्रहण करने वालों के; सर्व—अर्थ—सारी सिद्धियों के; दम्—दाता; स्व-कृत—आपके द्वारा प्रदत्त
 लाभ; वित्—कौन जानता है; विसृजेत—तिरस्कृत कर सकता है; कः—कौन; नु—निस्सन्देह; कः—कौन; वा—अथवा;
 भजेत्—स्वीकार कर सकता है; किम् अपि—कुछ भी; विस्मृतये—विस्मृति के लिए; अनु—फलस्वरूप; भूत्यै—इन्द्रियतृप्ति
 के लिए; किम्—क्या; वा—अथवा; भवेत्—है; न—नहीं; तव—तुम्हारे; पाद—चरणकमलों की; रजः—धूल; जुषाम्—
 सेवकों के लिए; नः—हम सभी।

तो भला किसमें साहस है, जो आत्मारूप, पूजा के सर्वप्रिय लक्ष्य तथा सबों के परम ईश्वर
 आपका—जो अपनी शरण लेने वाले भक्तों को सभी सम्भव सिद्धियाँ प्रदान करने वाले हैं,
 तिरस्कार कर सके? आपके द्वारा प्रदत्त लाभों को जानते हुए भला इतना कृतघ्न कौन हो सकता
 है? ऐसा कौन है, जो आपका तिरस्कार करके ऐसी वस्तु को भौतिक सुख के लिए स्वीकार
 करेगा जिससे आपकी विस्मृति हो? और आपके चरणकमलों की धूलि की सेवा में निरत हम
 लोगों को किस चीज का अभाव है?

तात्पर्य : श्री महाभारत में मोक्ष धर्म के नारायणीय में कहा गया है—

या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये ।

तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ॥

“विभिन्न आध्यात्मिक विधियों से मनुष्य जीवन के चार लक्ष्यों में से जो भी प्राप्त किया जा सकता है, उसे वह व्यक्ति ऐसे प्रयासों के बिना प्राप्त कर लेता है, जिसने समस्त व्यक्तियों के आश्रय भगवान् नारायण की शरण ले ली है।” इस प्रकार कृष्णभावनाभावित व्यक्तिजानता है कि वह भगवान् कृष्ण की भक्ति की शरण लेने से ही जीवन की सारी सिद्धि प्राप्त कर सकेगा। यह योग की सर्वोच्च अवस्था है, जिसकी पुष्टि भगवद्गीता में हुई है।

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश

ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ।

योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्व-

न्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

न एव—बिल्कुल नहीं; उपयन्ति—व्यक्त करने में सक्षम हैं; अपचितिम्—अपनी कृतज्ञता; कवयः—विद्वान् भक्तजन; तव—तुम्हारा; ईश—हे ईश्वर; ब्रह्म-आयुषा—ब्रह्मा जितनी आयु से; अपि—के होते हुए; कृतम्—वदान्य कार्य; ऋद्ध—बढ़ा हुआ; मुदः—प्रसन्नता; स्मरन्तः—स्मरण करते हुए; यः—जो; अन्तः—भीतर; बहिः—बाहर; तनु-भृताम्—देहधारियों का; अशुभम्—दुर्भाग्य; विधुन्वन्—दूर करते हुए; आचार्य—गुरु का; चैत्य—परमात्मा का; वपुषा—रूपों से; स्व—अपना; गतिम्—पथ; व्यनक्ति—दिखलाता है।

हे प्रभु, योगी कवि तथा आध्यात्मिक विज्ञान में पटु लोग आपके प्रति अपनी कृतज्ञता पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं कर सके यद्यपि उन्हें ब्रह्माजी जितनी दीर्घायु प्राप्त थी क्योंकि आप दो रूपों में—बाह्यतः आचार्य रूप में और आन्तरिक रूप में परमात्मा की तरह देहधारी जीव को अपने पास आने का निर्देश करते हुए उद्धार करने के लिए प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार भक्त को भगवान् कृष्ण उसके जीवन की अपेक्षा एक करोड़ गुना अधिक प्रिय हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार एक हजार बार ब्रह्माण्ड की सृष्टि होने तक भक्ति करते रहने पर भी भक्त भगवान् के उस ऋण को चुका नहीं पाता जो उन्होंने अपने चरणकमलों की भक्ति प्रदान करके दिया था। भगवान् हृदय के भीतर परमात्मा रूप में प्रकट होते हैं और बाहर से वे गुरु तथा कवि अवतार के रूप में—*भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* के वैदिक ज्ञान के रूप में।

श्रीशुक उवाच

इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा

पृष्ठो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ।

गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो

जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उद्धवेन—उद्धव द्वारा; अति-अनुरक्त—अत्यधिक आसक्त; चेतसा—हृदय से; पृष्ठः—पूछे गये; जगत्—ब्रह्माण्ड; क्रीडनकः—जिसका खिलौना; स्व-शक्तिभिः—अपनी ही शक्तियों द्वारा; गृहीत—धारण किये हुए; मूर्ति—साकार रूप; त्रयः—तीन; ईश्वर—समस्त नियन्ताओं में से; ईश्वरः—परम नियन्ता; जगाद—बोला; स-प्रेम—प्रेमी; मनः-हर—आकर्षक; स्मितः—मुसकान।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह अत्यन्त स्नेहिल उद्धव द्वारा पूछे जाने पर समस्त ईश्वरों के परम नियन्ता भगवान् कृष्ण जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने खिलौने के रूप में मानते हैं और

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के तीन रूप ग्रहण करते हैं, प्रेमपूर्वक अपनी सर्व-आकर्षक मुसकान दिखलाते हुए उत्तर देने लगे।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमङ्गलान् ।
यान्श्रद्धयाचरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच— भगवान् ने कहा; हन्त—हाँ; ते—तुमसे; कथयिष्यामि—कहूँगा; मम—अपने से सम्बन्धित; धर्मान्—धार्मिक सिद्धान्त; सु-मङ्गलान्—अत्यन्त शुभ; यान्—जो; श्रद्धया—श्रद्धा के साथ; आचरन्—सम्पन्न करते हुए; मर्त्यः—मर्त्य मानव; मृत्युम्—मृत्यु को; जयति—जीत लेता है; दुर्जयम्—न जीते जाने योग्य।

भगवान् ने कहा : हाँ, मैं तुमसे अपनी भक्ति के सिद्धान्तों का वर्णन करूँगा जिनको सम्पन्न करने से मर्त्य प्राणी दुर्जय मृत्यु पर विजय पा लेगा।

कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ।
मध्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

कुर्यात्—करे; सर्वाणि—सभी; कर्माणि—नियत कार्यकलाप; मत्-अर्थम्—मेरे लिए; शनकैः—जल्दबाजी किये बिना; स्मरन्—स्मरण करते हुए; मधि—मुझको; अर्पित—चढ़ाया गया; मनः-चित्तः—मन तथा बुद्धि; मत्-धर्म—मेरी भक्ति; आत्म-मनः—अपने मन का; रतिः—आकर्षण।

मनुष्य को चाहिए कि सदैव मेरा स्मरण करते हुए बिना जल्दबाजी के मेरे प्रति अपने सारे कर्तव्य पूरा करे। उसे चाहिए कि वह मुझे मन तथा बुद्धि अर्पित करके मेरी भक्ति के आकर्षण में अपना मन स्थिर करे।

तात्पर्य : मद्धर्मात्ममनोरतिः का अर्थ होता है कि मनुष्य का सारा प्रेम और स्नेह भगवान् को प्रसन्न करने में लगाया जाय। यहाँ इसका संकेत नहीं किया गया कि भक्ति में आत्म-तुष्टि के आस्वादन का प्रयास किया जाय प्रत्युत उसे भगवान् की प्रसन्नता के प्रति आकृष्ट होना चाहिए जिसे भगवान् कृष्ण से चली आ रही परम्परा के प्रामाणिक गुरु के आदेश को श्रद्धापूर्वक पूरा करके प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति के भी भीतर निजी तुष्टि के प्रति आसक्ति भौतिकतावादी है, जबकि भगवान् की तुष्टि के प्रति आसक्ति शुद्ध आध्यात्मिक भाव है।

देशान्युण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ।

देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥

शब्दार्थ

देशान्—स्थानों में; पुण्यान्—पवित्र; आश्रयेत्—शरण ले; मत्-भक्तैः—मेरे भक्तों द्वारा; साधुभिः—सन्त स्वभाव के; श्रितान्—आश्रित; देव—देवताओं; असुर—असुरों; मनुष्येषु—तथा मनुष्यों में; मत्-भक्त—मेरे भक्तों के; आचरितानि—कार्यकलाप; च—तथा ।

मनुष्य को उन पवित्र स्थानों में जाकर शरण लेनी चाहिए जहाँ मेरे सन्त स्वभाव वाले भक्तगण निवास करते हैं। उसे मेरे भक्तों के आदर्श कार्यकलापों से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए। ये भक्त देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों के बीच प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : नारद मुनि भगवान् के महान् भक्तों में से एक हैं, जो देवताओं के बीच प्रकट हुए। प्रह्लाद महाराज असुरों के बीच तथा अन्य अनेक बड़े बड़े भक्त तथा अम्बरीष महाराज तथा पाँचों पाण्डव मनुष्यों के बीच उत्पन्न हुए। मनुष्य को भक्तों के आदर्श कार्यों की तथा पवित्र स्थानों की भी शरण लेनी चाहिए जहाँ भक्तगण निवास कर रहे हों। इस तरह वह भक्ति-मार्ग में सुरक्षित रहेगा।

पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ।

कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

पृथक्—अकेला; सत्रेण—सभा में; वा—अथवा; मह्यम्—मेरे लिए; पर्व—मासिक त्यौहार यथा एकादशी; यात्रा—विशेष सम्मेलन; महा-उत्सवान्—तथा त्यौहार; कारयेत्—कराये; गीत—गायन; नृत्य-आद्यैः—नृत्य आदि से; महा-राज—राजसी; विभूतिभिः—ऐश्वर्य की निशानी के साथ, ठाट-बाट से।

मेरी पूजा के लिए विशेष रूप से नियत पर्वों, त्यौहारों तथा उत्सवों को मनाने के लिए या तो अकेले या सामूहिक जलसों में गायन, नृत्य तथा अन्य ठाट-बाट के साथ मनाने की व्यवस्था करे।

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ।

ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; एव—निस्सन्देह; सर्व-भूतेषु—सारे जीवों में से; बहिः—बाहर से; अन्तः—भीतर से; अपावृतम्—अनाच्छादित; ईक्षेत—देखे; आत्मनि—अपने भीतर; च—भी; आत्मानम्—परमात्मा को; यथा—जिस तरह; खम्—आकाश; अमल-आशयः—शुद्ध हृदय वाला ।

मनुष्य को चाहिए कि शुद्ध हृदय से सारे जीवों के भीतर और अपने भी भीतर मुझको परमात्मा रूप में देखे कि मैं किसी भौतिक वस्तु द्वारा अकलंकित हूँ तथा सर्वत्र भीतर तथा बाहर

उपस्थित भी हूँ जिस तरह सर्वव्यापी आकाश होता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् ने यह श्लोक उन लोगों को आकृष्ट करने के लिए कहा जो परब्रह्म के विषय में दार्शनिक चिन्तन के प्रति उन्मुख रहते हैं। ऐसे योग के विद्वान परम एकता की खोज करते हुए यहाँ पर वर्णित भगवान् के स्वरूप द्वारा आकृष्ट होंगे।

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ।

सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥

ब्राह्मणे पुक्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ।

अकूरे कूरके चैव समदृक्पण्डितो मतः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; सर्वाणि—सभी; भूतानि—जीवों को; मद्-भावेन—मेरी उपस्थिति के भाव से; महा-द्युते—हे परम तेजवान् उद्भव; सभाजयन्—आदर देते हुए; मन्यमानः—ऐसा मानते हुए; ज्ञानम्—ज्ञान; केवलम्—दिव्य; आश्रितः—की शरण लेते हुए; ब्राह्मणे—ब्राह्मण में; पुक्कसे—पुक्कस जनजाति से निकाले हुआ में; स्तेने—चोर में; ब्रह्मण्ये—ब्राह्मण संस्कृति का सम्मान करने वाले मनुष्य में; अर्के—सूर्य में; स्फुलिङ्गके—अग्नि की चिनगारी में; अकूरे—कृपालु भद्र में; कूरके—कूर में; च—भी; एव—निस्सन्देह; सम-दृक्—समान दृष्टि वाला; पण्डितः—विद्वान्; मतः—माना जाता है।

हे तेजस्वी उद्भव, जो व्यक्ति सारे जीवों को इस भाव से देखता है कि मैं उनमें से हर एक में उपस्थित हूँ और जो इस दैवी ज्ञान की शरण लेकर हर एक का सम्मान करता है, वह वास्तव में बुद्धिमान माना जाता है। ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण तथा नीच, चोर तथा ब्राह्मण संस्कृति के दानी संवर्धक, सूर्य तथा अग्नि की क्षुद्र चिनगारी, सद्य तथा कूर को समान रूप से देखता है।

तात्पर्य : यहाँ पर अनेक विलोमों को रखा गया है—उदाहरणार्थ उच्च जाति का ब्राह्मण तथा निम्न जाति का आदिवासी, भद्र पुरुषों की वस्तुएँ चुराने वाला चोर तथा ब्राह्मणों को दान देने वाली ब्राह्मण संस्कृति का आदर करने वाला, सर्वशक्तिमान सूर्य तथा नगण्य स्फुलिंग और अन्त में, सद्य तथा कूर। सामान्यतया ऐसे विरोधी गुणों में अन्तर करने की क्षमता होने पर मनुष्य बुद्धिमान बनता है। तो फिर भगवान् यह कैसे कह सकते हैं कि ऐसे स्पष्ट अन्तरों की उपेक्षा करने से मनुष्य विद्वान् होता है? इसका उत्तर मद्-भावेन शब्द में मिलता है, जिसका अर्थ है विद्वान् व्यक्ति भगवान् को हर वस्तु के भीतर देखता है। इसलिए बाहर से नाना प्रकार की भौतिक स्थितियों का अवलोकन करते तथा उनसे निपटते हुए, विद्वान् व्यक्ति सारे जीवों की अपार एकता से अधिक प्रभावित और चिन्तित रहता है, जो हर वस्तु के भीतर भगवान् की उपस्थिति पर आधारित है। जैसाकि यहाँ कहा गया है, असली बुद्धिमान

व्यक्ति बाह्य भौतिक विवेक तक ही सीमित नहीं रहता ।

नरेष्वभीक्षणं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ।

स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

नरेषु—सारे पुरुषों में; अभीक्षणम्—निरन्तर; मत्-भावम्—मेरी साकार उपस्थिति; पुंसः—पुरुष की; भावयतः—ध्यान कर रहा; अचिरात्—तुरन्त; स्पर्धा—होड़ करने की प्रवृत्ति (समानों के विरुद्ध); असूया—द्वेष (गुरुजनों से); तिरस्काराः—तथा दुरुपयोग (छोटों का); स—सहित; अहङ्काराः—मिथ्या अहंकार; वियन्ति—लुप्त हो जाते हैं; हि—निस्सन्देह ।

जो व्यक्ति सारे पुरुषों में मेरी उपस्थिति का निरन्तर ध्यान करता है उसके लिए स्पर्धा की

कुप्रवृत्तियाँ, ईर्ष्या तथा तिरस्कार एवं उसी के साथ मिथ्या अहंकार तुरन्त नष्ट हो जाते हैं ।

तात्पर्य : बद्ध आत्माएँ अपने समान वालों से स्पर्धा, अपने से श्रेष्ठों से ईर्ष्या और अपने अधीनस्थों को छोटा मानने की इच्छा से प्रेरित होती रहती हैं । ये दूषित लालसाएँ तथा इनके साथ ही इनका मूल आधार, मिथ्या अहंकार हर जीव के भीतर भगवान् का ध्यान करने से तुरन्त दूर हो सकते हैं ।

विसृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ।

प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्च चाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

विसृज्य—त्याग कर; स्मयमानान्—हँसते हुआओं को; स्वान्—अपने मित्रों; दृशम्—दृष्टि को; व्रीडाम्—पेशानी; च—तथा; दैहिकीम्—देहात्म बोध का; प्रणमेत्—नमस्कार करे; दण्ड-वत्—डंडे की तरह गिर कर; भूमौ—भूमि पर; आ—यहाँ तक कि; श्व—कुत्तों; चाण्डाल—चांडालों; गो—गौवों; खरम्—तथा गधों को ।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने संगियों के उपहास की परवाह न करते हुए, देहात्म बुद्धि एवं उसके साथ लगी चिन्ता को त्याग दे । उसे कुत्तों, चाण्डालों, गौवों तथा गधों तक के समक्ष भूमि पर दंड के समान गिर कर नमस्कार करना चाहिए ।

तात्पर्य : मनुष्य को चाहिए कि वह सारे प्राणियों के भीतर भगवान् को देखने का अभ्यास करे । श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने समस्त भक्तों को सलाह दी थी कि वे अपने को तृण से भी नीच तथा वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु मानें । ऐसी विनीत स्थिति में मनुष्य भगवान् की भक्ति करते हए विचलित नहीं होगा । भक्त कभी मूर्खतापूर्वक यह नहीं सोचता कि गाय या गधा ईश्वर है, प्रत्युत वह भगवान् को सारे प्राणियों के भीतर देखता है और इस उच्च आध्यात्मिक स्तर पर वह भेद-भाव नहीं बरतता ।

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; सर्वेषु—सभी; भूतेषु—जीवों में; मत्-भावः—मेरी उपस्थिति का भाव; न उपजायते—उत्पन्न नहीं होता;
तावत्—तब तक; एवम्—इस तरह से; उपासीत—पूजा करे; वाक्—वाणी; मनः—मन; काय—तथा शरीर के; वृत्तिभिः—
कार्यों के द्वारा।

जब तक मनुष्य सारे जीवों के भीतर मुझे देख पाने की क्षमता उत्पन्न नहीं कर लेता, तब तक उसे चाहिए कि वह अपनी वाणी, मन तथा शरीर के कार्यों द्वारा इस विधि से मेरी पूजा करता रहे।

तात्पर्य : जब तक मनुष्य सारे जीवों के भीतर भगवान् का साक्षात्कार न करने लगे, उसे चाहिए कि सारे प्राणियों को नमस्कार करने की विधि को चालू रखे। भले ही सारे प्राणियों के समक्ष भूमि पर वास्तव में न गिरा जाये, किन्तु कम-से-कम मन के भीतर अथवा शब्दों से सभी जीवों का सम्मान तो करे। इससे भक्त को जल्दी ही आत्म-साक्षात्कार हो सकेगा।

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययात्मनीषया ।
परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुदितसंशयः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सर्वम्—हर वस्तु; ब्रह्म-आत्मकम्—परब्रह्म पर आश्रित; तस्य—उसके लिए; विद्यया—दिव्य ज्ञान द्वारा; आत्म-मनीषया—
परमात्मा की अनुभूति द्वारा; परिपश्यन्—सर्वत्र देखते हुए; उपरमेत्—भौतिक कर्मों से दूर रहे; सर्वतः—सभी प्रकार से; मुक्त-
संशयः—सारे सन्देहों से मुक्त।

सर्वव्यापक भगवान् के ऐसे दिव्य ज्ञान से मनुष्य परब्रह्म को सर्वत्र देख सकता है। सारे संशयों से मुक्त होकर वह सकाम कर्मों का परित्याग कर देता है।

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; हि—निस्सन्देह; सर्व—सभी; कल्पानाम्—विधियों का; सध्रीचीनः—अत्यन्त उपयुक्त; मतः—माना जाता है;
मम—मेरे द्वारा; मत्-भावः—मुझको देखना; सर्व-भूतेषु—सारे जीवों के भीतर; मनः-वाक्-काय-वृत्तिभिः—मन, वाणी तथा
शरीर के कार्यों द्वारा।

निस्सन्देह मैं मन, वाणी तथा शरीर के कार्यों को प्रयोग करके सारे जीवों के भीतर मेरी अनुभूति करने की विधि को आध्यात्मिक प्रकाश की सर्वश्रेष्ठ सम्भव विधि मानता हूँ।

न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ।

मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं है; हि—निस्सन्देह; अङ्ग—हे उद्धव; उपक्रमे—प्रयास में; ध्वंसः—विनाश; मत्-धर्मस्य—मेरी भक्ति का; उद्धव—हे उद्धव; अणु—रंचमात्र; अपि—भी; मया—मेरे द्वारा; व्यवसितः—स्थापित; सम्यक्—पूर्णरूपेण; निर्गुण-त्वात्—इसके दिव्य होने से; अनाशिषः—कोई परोक्ष प्रयोजन न होना।

हे उद्धव, चूँकि मैंने स्वयं इसकी स्थापना की है, इसलिए मेरी भक्ति की यह विधि दिव्य है और किसी भौतिक प्रेरणा से मुक्त है। निश्चय ही भक्त इस विधि को ग्रहण करने से रंचमात्र भी हानि नहीं उठाता।

तात्पर्य : यद्यपि बड़े बड़े मुनियों तथा अधिकारियों ने मानव प्रगति की विविध विधियाँ स्थापित की हैं, किन्तु साक्षात् भगवान् ने भक्ति-योग प्रणाली चालू की है, जिसमें मनुष्य प्रेममयी सेवा द्वारा भगवान् की शरण ग्रहण करता है। जो व्यक्ति निजी प्रेरणा के बिना भगवान् की सेवा करता है, वह कभी भी अपनी उन्नति में परास्त नहीं हो सकता और निकट भविष्य में भगवद्धाम अवश्य जाएगा।

यो यो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ।

तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यः, यः—जो जो; मयि—मुझमें; परे—परम; धर्मः—धर्म है; कल्प्यते—अग्रसर होता है; निष्फलाय—भौतिक कर्म के फल से मुक्त बनने की दिशा में; चेत्—यदि; तत्—उसका; आयासः—प्रयास; निरर्थः—व्यर्थ; स्यात्—हो सके; भय-आदेः—भय इत्यादि; इव—सदृश; सत्-तम—हे साधु-पुरुषों में श्रेष्ठ।

हे सन्त शिरोमणि उद्धव, भयावह स्थिति में सामान्य व्यक्ति रोता है, डर जाता है और शोक करता है यद्यपि ऐसी व्यर्थ की भावनाओं से स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता किन्तु निजी प्रेरणा के बिना जो कार्य मुझे अर्पित किये जाते हैं, वे, बाहर से व्यर्थ होते हुए भी, वास्तविक धर्म-विधि के तुल्य हैं।

तात्पर्य : निजी इच्छा के बिना तुच्छ से तुच्छ कार्य भी जब भगवान् को अर्पित किया जाता है, तो वह मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता तक उठा देता है। वस्तुतः भगवान् कृष्ण सदा ही अपने भक्त की रक्षा तथा पालन-पोषण करते हैं। किन्तु यदि कोई भक्त अपनी भक्ति को अबाध चलते रहने के लिए भगवान् से सुरक्षा या लालन-पालन के लिए पुकार करता है, तो भगवान् कृष्ण ऐसी बाहरी अनावश्यक याचनाओं को सर्वोच्च धार्मिक विधि के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

एषा—यह; बुद्धि-मताम्—बुद्धिमान की; बुद्धिः—बुद्धि; मनीषा—चतुराई; च—तथा; मनीषिणाम्—चतुर की; यत्—जो;
सत्यम्—असली; अनृतेन—झूठ से; इह—इस जीवन में; मर्त्येन—मर्त्य द्वारा; आप्नोति—प्राप्त करता है; मा—मुझको;
अमृतम्—अमर।

यह विधि बुद्धिमान की परम बुद्धि और परम चतुर की चतुराई है क्योंकि इसका पालन करने से मनुष्य इसी जीवन में मुझ नित्य सत्य को पाने में नश्वर तथा असत्य का उपयोग कर सकता है।

तात्पर्य : जैसाकि इस अध्याय में वर्णित है, जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में लग कर निजी प्रतिष्ठा चाहता है, वह बुद्धिमान तथा चतुर नहीं माना जाता। इसी तरह जो कृत्रिम दिव्य दार्शनिक बनने के लिए इच्छुक रहता है, वह सर्वाधिक बुद्धिमान नहीं है। न ही जो धन संचित करने में पटु होता है। भगवान् यहाँ यह बतलाते हैं कि सर्वाधिक बुद्धिमान तथा चतुर व्यक्ति वह है, जो अपने नश्वर मायामय शरीर को तथा अपनी सम्पत्ति को प्रेमपूर्वक तथा बिना निजी उद्देश्य के भगवान् को अर्पित कर देता है। इस तरह भक्त नित्य परब्रह्म को प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में, असली बुद्धिमत्ता तो बिना किसी निजी इच्छा या द्वैत के भगवान् कृष्ण की शरण में जाना है। यही भगवान् का मत है।

एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य सङ्ग्रहः ।
समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह; ते—तुमसे; अभिहितः—बतलाया गया; कृत्स्नः—पूरी तरह; ब्रह्म-वादस्य—परब्रह्म के विज्ञान का; सङ्ग्रहः—
सर्वेक्षण; समास—संक्षेप में; व्यास—विस्तार से; विधिना—दोनों विधियों से; देवानाम्—देवताओं के लिए; अपि—भी;
दुर्गमः—पहुँच के बाहर।

इस तरह मैंने तुम्हें, संक्षेप और विस्तार दोनों ही रूपों में, परब्रह्म विषयक विज्ञान का पूर्ण व्यौरा बतला दिया। यह विज्ञान देवताओं के लिए भी समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

तात्पर्य : देवानाम् शब्द उन जीवों का सूचक है, जो रजोगुणी हैं (यथा देवता, सन्त तथा पवित्र दार्शनिक) किन्तु फिर भी परब्रह्म को नहीं समझ पाते, क्योंकि उनमें भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण का अभाव है।

अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ।
एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अभीक्ष्णशः—बारम्बार; ते—तुमसे; गदितम्—कहा गया; ज्ञानम्—ज्ञान; विस्पष्ट—स्पष्ट; युक्ति—तर्क; मत्—से युक्त;
एतत्—यह; विज्ञाय—ठीक से समझ लेने पर; मुच्येत—मुक्त हो जायेगा; पुरुषः—व्यक्ति; नष्ट—विनष्ट; संशयः—उसके
सन्देह ।

मैं बारम्बार तुमसे स्पष्ट तर्क सहित यह ज्ञान बता चुका हूँ। जो कोई इसे ठीक से समझ लेता
है, वह सारे संशयों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ।

सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ।
सनातनं ब्रह्मगुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

स-विविक्तम्—अच्छी तरह व्याख्यायित; तव—तुम्हारा; प्रश्नम्—प्रश्न; मया—मेरे द्वारा; एतत्—यह; अपि—भी; धारयेत्—
ध्यान एकाग्र करता है; सनातनम्—शाश्वत; ब्रह्म-गुह्यम्—वेदों का रहस्य; परम्—परम; ब्रह्म—ब्रह्म; अधिगच्छति—प्राप्त
करता है ।

जो कोई तुम्हारे प्रश्नों के इन स्पष्ट उत्तरों पर अपना ध्यान एकाग्र करता है, वह वेदों के
शाश्वत गुह्य लक्ष्य—परब्रह्म—को प्राप्त करेगा ।

य एतन्मम भक्तेषु सम्प्रदद्यात्सुपुष्कलम् ।
तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एतत्—यह; मम—मेरा; भक्तेषु—भक्तों में से; सम्प्रदद्यात्—उपदेश देता है; सु-पुष्कलम्—उदारतापूर्वक; तस्य—
उसको; अहम्—मैं; ब्रह्म-दायस्य—ब्रह्म विषयक ज्ञान प्रदान करने वाले व्यक्ति को; ददामि—देता हूँ; आत्मानम्—स्वयं को;
आत्मना—स्वयं द्वारा ।

जो व्यक्ति उदारतापूर्वक इस ज्ञान को मेरे भक्तों के बीच फैलाता है, वह परब्रह्म का देने
वाला है और मैं उसे अपने आपको दे देता हूँ ।

य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ।
स पूयेताहरहर्मा ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एतत्—यह; समधीयीत—जोर-जोर से बाँचता (पाठ करता) है; पवित्रम्—पवित्र बनाने वाला; परमम्—परम;
शुचि—स्पष्ट तथा पारदर्शी; सः—वह; पूयेत—शुद्ध हो जाता है; अहः—दिन प्रतिदिन; माम्—मुझको; ज्ञान-दीपेन—ज्ञान
के दीपक से; दर्शयन्—प्रकट करते हुए ।

जो व्यक्ति इस स्पष्ट तथा शुद्ध बनाने वाले परम ज्ञान को जोर-जोर से बाँचता है, वह दिन प्रतिदिन शुद्ध बनता जाता है क्योंकि वह दिव्य ज्ञानरूपी दीपक से अन्यो को मुझे उद्घाटित करता है।

य एतच्छुद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ।
मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एतत्—यह; शुद्धया—शुद्धापूर्वक; नित्यम्—नियमित; अव्यग्रः—विचलित हुए बिना; शृणुयात्—सुनता है; नरः—पुरुष; मयि—मुझमें; भक्तिम्—भक्ति; पराम्—दिव्य; कुर्वन्—करते हुए; कर्मभिः—सकाम कर्मों द्वारा; न—नहीं; सः—वह; बध्यते—बंध जाता है।

जो कोई इस ज्ञान को श्रद्धा तथा ध्यान के साथ नियमित रूप से सुनता है और साथ ही मेरी शुद्ध भक्ति में लगा रहता है, वह भौतिक कर्म के फलों के बन्धन से कभी नहीं बँधता।

अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ।
अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; उद्धव—हे उद्धव; त्वया—तुम्हारे द्वारा; ब्रह्म—आध्यात्मिक ज्ञान; सखे—हे मित्र; समवधारितम्—पर्याप्त समझा गया; अपि—क्या; ते—तुम्हारा; विगतः—दूर हो गया है; मोहः—मोह; शोकः—शोक; च—तथा; असौ—यह; मनः—भवः—तुम्हारे मन से उत्पन्न।

हे मित्र उद्धव, क्या अब तुम इस दिव्य ज्ञान को भलीभाँति समझ गये? क्या तुम्हारे मन में उठने वाले मोह तथा शोक दूर हो गये?

तात्पर्य : श्री उद्धव भगवान् कृष्ण की शक्ति को उनसे पृथक् अभिव्यक्ति मानने के कारण विमोहित थे। उद्धव का शोक इसलिए उत्पन्न हुआ था क्योंकि वे अपने को कृष्ण से पृथक् समझ रहे थे। वस्तुतः श्री उद्धव नित्य मुक्तात्मा हैं किन्तु भगवान् ने उन्हें मोह तथा शोक में डाल दिया था जिससे उद्धव-गीता के इस परम ज्ञान का प्रवचन किया जा सके। भगवान् कृष्ण का प्रश्न यहाँ यह सूचित करता है कि यदि उद्धव ने इस ज्ञान को ठीक से न समझा हो, तो भगवान् इसी ज्ञान को पुनः बतला दें। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार, श्री उद्धव कृष्ण के घनिष्ठ मित्र हैं, अतः कृष्ण का यह प्रश्न मैत्री और क्रीड़ा भाव से पूछा गया था। कृष्ण को उद्धव के कृष्णभावनामृत में पूर्ण प्रकाश प्राप्त होने का अभिज्ञान था।

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; दाम्भिकाय—दम्भी, पाखण्डी व्यक्ति को; नास्तिकाय—नास्तिक को; शठाय—
धूर्त को; च—तथा; अशुश्रूषोः—श्रद्धा के साथ न सुनने वाले को; अभक्ताय—अभक्त को; दुर्विनीताय—दुर्विनीत को;
दीयताम्—दिया जाना चाहिए।

तुम इस उपदेश को ऐसे व्यक्ति को मत देना जो पाखण्डी, नास्तिक या बेईमान हो या जो
श्रद्धापूर्वक न सुनता हो, जो भक्त न हो या जो विनीत न हो।

एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ।
साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एतैः—इन; दोषैः—दोषों से; विहीनाय—विहीन व्यक्ति को; ब्रह्मण्याय—ब्राह्मणों के कल्याण के प्रति समर्पित व्यक्ति को;
प्रियाय—प्रेमी को; च—तथा; साधवे—साधु प्रकृति के; शुचये—शुद्ध; ब्रूयात्—कहे; भक्तिः—भक्ति; स्यात्—यदि उपस्थित
हो; शूद्र—सामान्य श्रमिक; योषिताम्—तथा स्त्रियों के।

यह ज्ञान उसे दिया जाय जो इन दुर्गुणों से मुक्त हो, जो ब्राह्मणों के कल्याण-कार्य के प्रति
समर्पित हो तथा जो प्रेमी हो, सन्त स्वभाव का हो और शुद्ध हो। और यदि सामान्य श्रमिकों तथा
स्त्रियों में भगवान् के प्रति भक्ति पाई जाय, तो उन्हें भी योग्य श्रोताओं के रूप में स्वीकार करना
चाहिए।

नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।
पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; विज्ञाय—पूरी तरह समझ कर; जिज्ञासोः—जिज्ञासुओं के; ज्ञातव्यम्—ज्ञेय विषय; अवशिष्यते—रह
जाता है; पीत्वा—पीकर; पीयूषम्—स्वादिष्ट; अमृतम्—अमृत; पातव्यम्—पीने योग्य; न—कुछ भी नहीं; अवशिष्यते—बचा
रहता है।

जब जिज्ञासु व्यक्ति इस ज्ञान को समझ लेता है, तो उसे और जानने के लिए कुछ भी नहीं
रहता। आखिर, जो सर्वाधिक स्वादिष्ट अमृत का पान कर चुकता है, वह कहीं प्यासा रह सकता
है?

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे ।

यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ज्ञाने—ज्ञान की विधि में; कर्मणि—सकाम कर्म में; योगे—योग में; च—तथा; वार्तायाम्—सामान्य व्यापार में; दण्ड-धारणे—राजनैतिक शासन में; यावान्—जो भी; अर्थः—उपलब्धि; नृणाम्—मनुष्यों की; तात—हे उद्भव; तावान्—उतना; ते—तुमसे; अहम्—मैं; चतुः-विधः—चार प्रकार का (चार पुरुषार्थ)।

वैश्लेषिक ज्ञान, कर्मकाण्ड, योग, सांसारिक वाणिज्य तथा राजनैतिक प्रशासन द्वारा लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में प्रगति करना चाहते हैं। किन्तु क्योंकि तुम मेरे भक्त हो इसलिए जो कुछ इन नाना विधियों से प्राप्त किया जा सकता है, उसे तुम आसानी से मेरे भीतर पा सकोगे।

तात्पर्य : जो कुछ भी विद्यमान है उसका आधार भगवान् कृष्ण हैं और जो भी भगवान् की एकमात्र शरण ग्रहण करता है, वह कृष्ण के शरणागत होने के अपने बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय से कोई हानि नहीं उठाता।

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

मर्त्यः—मर्त्य; यदा—जब; त्यक्त—त्याग हुआ; समस्त—सारे; कर्मा—सकाम कर्म; निवेदित-आत्मा—अपनी आत्मा को अर्पित कर चुका; विचिकीर्षितः—कुछ विशेष करने के लिए उत्सुक; मे—मेरे लिए; तदा—उस समय; अमृतत्वम्—अमरता; प्रतिपद्यमानः—प्राप्त करने की विधि में; मया—मेरे साथ; आत्म-भूयाय—समान ऐश्वर्य के लिए; च—भी; कल्पते—पात्र बन जाता है; वै—निस्सन्देह।

जो व्यक्ति सारे सकाम कर्म त्याग देता है और मेरी सेवा करने की तीव्र उत्कंठा से पूरी तरह मुझमें समर्पित हो जाता है, वह जन्म-मृत्यु से मोक्ष पा लेता है और मेरे ऐश्वर्य के भागी के पद पर उन्नत हो जाता है।

श्रीशुक उवाच
स एवमादर्शितयोगमार्ग-
स्तदोत्तमःश्लोकवचो निशाम्य ।
बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो
न किञ्चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सः—वह (उद्भव); एवम्—इस प्रकार; आदर्शित—दिखाया गया; योग-मार्गः—योग का मार्ग; तदा—तब; उत्तमः-श्लोक—भगवान् श्रीकृष्ण के; वचः—शब्द; निशाम्य—सुन कर; बद्ध-अञ्जलिः—

स्तुति में हाथ जोड़े हुए; प्रीति—प्रेम के कारण; उपरुद्ध—रूँधा हुआ; कण्ठः—गला; न किञ्चित्—कुछ नहीं; ऊचे—कहा; अश्रु—आँसुओं से; परिप्लुत—भरे हुए; अक्षः—नेत्र।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् कृष्ण द्वारा कहे गये इन शब्दों को सुन कर तथा इस प्रकार सम्पूर्ण योग-मार्ग दिखलाये जा चुकने पर, उद्धव ने नमस्कार करने के लिए अपने हाथ जोड़ लिये। किन्तु उनका गला प्रेम से रूँध गया और आँखें अश्रुओं से पूरित हो गईं जिससे वे कुछ भी नहीं कह पाये।

विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं

धैर्येण राजन्बहुमन्यमानः ।

कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं

शीर्ष्णां स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

विष्टभ्य—रोक कर; चित्तम्—अपना मन; प्रणय—प्रेमपूर्वक; अवघूर्णम्—पूर्णतया विचलित; धैर्येण—धैर्यपूर्वक; राजन्—हे राजा; बहु-मन्यमानः—कृतज्ञता अनुभव करते हुए; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़े; प्राह—कहा; यदु-प्रवीरम्—यदुओं के महानतम वीर से; शीर्ष्णां—सिर से; स्पृशन्—छूते हुए; तत्—उनके; चरण-अरविन्दम्—चरणकमलों को।

प्रेम से अभिभूत हुए अपने मन को स्थिर करते हुए उद्धव ने यदुवंश के महानतम वीर भगवान् कृष्ण के प्रति अतीव कृतज्ञता का अनुभव किया। हे राजा परीक्षित, वे अपने सिर से भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श करने के लिए झुके और तब हाथ जोड़ कर बोले।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, श्री उद्धव के मन में भगवान् कृष्ण से विछोह का भय निरन्तर घर करता जा रहा था, इसलिए वे अपने ऊपर भगवान् की महती कृपा का स्मरण करके अपने उत्साह को बनाये रखना चाहते थे। उन्होंने भगवान् के प्रति कृतज्ञता के भाव से अपने मन को स्थिर किया।

श्रीउद्धव उवाच

विद्रावितो मोहमहान्धकारो

य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ।

विभावसोः किं नु समीपगस्य

शीतं तमो भीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; विद्रावितः—नष्ट हो चुका है; मोह—मोह का; महा-अन्धकारः—महान् अंधेरा; यः—जो; आश्रितः—शरण लिया गया; मे—मेरे द्वारा; तव—तुम्हारी; सन्निधानात्—उपस्थिति से; विभावसोः—सूर्य का; किम्—

क्या; नु—निस्सन्देह; समीप-गस्य—निकट आये हुए का; शीतम्—जाड़ा; तमः—अंधकार; भीः—भय; प्रभवन्ति—शक्ति रखते हैं; अज—हे अजन्मा; आद्य-ओ प्रिमेवल् लोर्ड्.

श्री उद्धव ने कहा : हे अजन्मा आदि भगवान्, यद्यपि मैं मोह के गहन अंधकार में गिर चुका था, किन्तु आपकी दयामयी संगति से अब मेरा अज्ञान दूर हो चुका है। निस्सन्देह, शीत, अंधकार तथा भय उस पर किस तरह अपनी शक्ति दिखा सकते हैं, जो तेजवान् सूर्य के निकट पहुँच गया हो?

तात्पर्य : यद्यपि श्री उद्धव को भगवान् श्रीकृष्ण से बिछुड़ने का भय लग रहा था किन्तु अब उनकी समझ में आ चुका था कि मूलतः भगवान् ही सर्वेसर्वा हैं। जिसने भगवान् के चरणकमलों में शरण ले रखी है, उसका कृष्णभावनामृत न तो कभी कम हो सकता है, न उसे कोई डरा-धमका सकता है।

प्रत्यर्पितो मे भवतानुकम्पिना

भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ।

हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं

कोऽन्यं समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

प्रत्यर्पितः—बदले में अर्पित; मे—मुझको; भवता—आपके द्वारा; अनुकम्पिना—कृपालु; भृत्याय—अपने सेवक को; विज्ञान-मयः—दिव्य ज्ञान का; प्रदीपः—दीप्त प्रकाश; हित्वा—त्याग कर; कृत-ज्ञः—कृतज्ञ; तव—तुम्हारे; पाद-मूलम्—चरणकमलों के तलवे; कः—कौन; अन्यम्—दूसरे को; समीयात्—जा सकता है; शरणम्—शरण के लिए; त्वदीयम्—तुम्हारी।

मेरे तुच्छ आत्म-निवेदन के बदले, आपने मुझ अपने सेवक पर दयापूर्वक दिव्य ज्ञान के प्रदीप का दान दिया है। इसलिए आपका कौन भक्त जिसमें तनिक भी कृतज्ञता होगी, आपके चरणकमलों को त्याग कर अन्य स्वामी की शरण ग्रहण करेगा?

वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो

दाशार्हवृष्णयन्धकसात्वतेषु ।

प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया

स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

वृक्णः—कट गया; च—तथा; मे—मेरा; सु-दृढः—अत्यन्त दृढ़; स्नेह-पाशः—स्नेह का बन्धन; दाशार्ह-वृष्णि-अन्धक-सात्वतेषु—दाशार्हों, वृष्णियों, अन्धकों तथा सात्वतों के लिए; प्रसारितः—फैलाया हुआ; सृष्टि—आपकी सृष्टि की; विवृद्धये—वृद्धि के लिए; त्वया—आपके द्वारा; स्व-मायया—आपकी माया से; हि—निस्सन्देह; आत्म—आत्मा का; सु-बोध—उचित ज्ञान का; हेतिना—तलवार द्वारा।

दाशार्हों, वृष्णियों, अन्धकों तथा सात्वतों के परिवारों के प्रति मेरे स्नेह की दृढ़ता से बँधी

हुई रस्सी—वह रस्सी जिसे आपने अपनी सृष्टि को उत्पन्न करने हेतु अपनी माया से आरम्भ में मेरे ऊपर डाल रखी थी—अब दिव्य आत्म-ज्ञान के हथियार से कट गई है।

तात्पर्य : यद्यपि इस श्लोक में उल्लिखित परिवारों के सदस्य कृष्ण के नित्य संगी हैं, अतः स्नेह के समुचित पात्र हैं, किन्तु श्री उद्धव ने उन्हें भगवान् के शुद्ध भक्त न मान कर अपने सम्बन्धियों के रूप में माना है। भगवान् की माया से प्रभावित होकर उद्धव ने इन कुलों के लिए समृद्धि तथा विजय की कामना की थी। किन्तु अब कृष्ण के उपदेशों को सुन कर उन्होंने अपना मन एकमात्र भगवान् कृष्ण पर एकाग्र कर लिया है, अतः वे अपने तथाकथित पारिवारिक सदस्यों को, बिना किसी भौतिक चिंतन के, भगवान् का नित्य दास मानते हैं।

नमोऽस्तु ते महायोगिन्प्रपन्नमनुशाधि माम् ।

यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

नमः अस्तु—नमस्कार है; ते—तुमको; महा-योगिन्—हे योगियों में सबसे महान्; प्रपन्नम्—शरणागत; अनुशाधि—कृपया आदेश दें; माम्—मुझको; यथा—किस तरह; त्वत्—तुम्हारे; चरण-अम्भोजे—चरणकमलों पर; रतिः—दिव्य आसक्ति; स्यात्—होए; अनपायिनी—अचल।

हे महायोगी, आपको नमस्कार है। मुझ शरणागत को आप उपदेश दें कि मैं किस तरह आपके चरणकमलों के प्रति अनन्य अनुरक्ति पा सकता हूँ।

श्रीभगवानुवाच

गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ।

तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥

ईक्ष्यालकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः ।

वसानो वल्कलान्यङ्ग वन्यभुक्सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥

तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः ।

शान्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥

मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ।

मय्यावेशितवाङ्मनो मद्धर्मनिरतो भव ।

अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेध्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; गच्छ—जाओ; उद्धव—हे उद्धव; मया—मेरे द्वारा; आदिष्टः—आदेश दिया गया; बदरी-आख्यम्—बद्रीका नामक; मम—मेरी; आश्रमम्—कुटिया; तत्र—वहाँ; मत्-पाद—मेरे पैरों से निकले; तीर्थ—पवित्र स्थानों के; उदे—जल में; स्नान—स्नान करके; उपस्पर्शनैः—तथा शुद्धि के लिए स्पर्श करने से; शुचिः—विमल; ईक्ष्या—चितवन से;

अलकनन्दायाः—गंगा नदी पर; विधूत—विमल; अशेष—समस्त; कल्मषः—पाप; वसानः—पहन करके; वल्कलानि—छाल; अङ्ग—हे उद्धव; वन्य—जंगल के फल-फूल, मूल आदि; भुक्—खाकर; सुख—सुखी; निःस्पृहः—तथा इच्छा से रहित; तितिक्षुः—सहिष्णु; द्वन्द्व-मात्राणाम्—सारे द्वैतों के; सु-शीलः—सन्त जैसा आचरण करते हुए; संयत-इन्द्रियः—वशीभूत इन्द्रियों से; शान्तः—शान्त; समाहित—पूर्णतया एकाग्र; धिया—बुद्धि से; ज्ञान—ज्ञान; विज्ञान—तथा अनुभूति से; संयुतः—से युक्त; मत्तः—मुझसे; अनुशिक्षितम्—सीखा हुआ; यत्—जो; ते—तुम्हारे द्वारा; विविक्तम्—विवेक से सुनिश्चित; अनुभावयन्—पूरी तरह ध्यान करते हुए; मयि—मुझमें; आवेशित—लीन; वाक्—तुम्हारे शब्द; चित्तः—तथा मन; मत्-धर्म—मेरे दिव्य गुण; निरतः—अनुभव करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील; भव—इस तरह स्थित होओ; अतिव्रज्य—इसको पार करके; गतीः—भौतिक प्रकृति के गन्तव्य; तिस्रः—तीन; माम्—मेरे पास; एष्यसि—तुम आओगे; ततः परम्—तत्पश्चात्।

भगवान् ने कहा : हे उद्धव, मेरा आदेश लो और बदरिका नामक मेरे आश्रम जाओ। तुम वहाँ के पवित्र जल को, जो मेरे चरणकमलों से निकला है, स्पर्श करना तथा उसमें स्नान करके अपने को शुद्ध करना। तुम पवित्र अलकनन्दा नदी के दर्शन से समस्त पापों से अपने को मुक्त करना। तुम वृक्षों की छाल पहनना और जंगल में जो कुछ मिल सके उसे खाना। इस तरह तुम संतुष्ट और इच्छा से मुक्त, समस्त द्वैतों के प्रति सहिष्णु, अच्छे स्वभाव के, आत्मसंयमी, शान्त तथा आध्यात्मिक ज्ञान एवं विज्ञान से समन्वित हो सकोगे। अपना ध्यान एकाग्र करके मेरे द्वारा दिये गये उपदेशों पर निरन्तर मनन करना और इनके सार को आत्मसात् करना। अपने वचनों तथा विचारों को मुझ पर स्थिर करना और मेरे दिव्य गुणों की अनुभूति को अपने में बढ़ाने के लिए सदैव प्रयास करना। इस तरह तुम प्रकृति के तीन गुणों के गन्तव्य को पार करके अन्त में मेरे पास आ जाओगे।

श्रीशुक उवाच

स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः

प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ।

शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधी-

न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सः—वह; एवम्—इस तरह; उक्तः—कहा गया; हरि-मेधसा—भगवान् द्वारा जिनकी बुद्धि भौतिक जीवन के कष्ट को हर लेती है; उद्धवः—उद्धव ने; प्रदक्षिणम्—अपनी दाएँ ओर मुँह करके; तम्—उसको; परिसृत्य—परिक्रमा करके; पादयोः—दोनों पाँवों पर; शिरः—अपना सिर; निधाय—रख कर; अश्रु-कलाभिः—आँसू की बूँदों से; आर्द्र—त्रवित; धीः—जिसका हृदय; न्यषिञ्चत्—भिगो दिया; अद्वन्द्व-परः—भौतिक द्वन्द्वों में न फँस कर; अपि—यद्यपि; अपक्रमे—विदा लेते समय।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह भौतिक जीवन के समस्त कष्ट को नष्ट करने वाली बुद्धि के स्वामी भगवान् कृष्ण द्वारा सम्बोधित किये जाने पर श्री उद्धव ने भगवान् की परिक्रमा की और तब भगवान् के चरणों पर अपना सिर रख कर भूमि पर लेट गये। यद्यपि उद्धव सारे

भौतिक द्वन्द्वों के प्रभाव से मुक्त थे, किन्तु उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था और विदा के समय उन्होंने अपने आँसुओं से भगवान् के चरणकमलों को भिगो दिया।

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरौ

न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ।

कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके

बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

सु-दुस्त्यज—त्याग पाना असम्भव; स्नेह—जिस पर उसने स्नेह टिका रखा था; वियोग—विछोह के कारण; कातरः—अत्यन्त दुखी, आपे से बाहर; न शक्नुवन्—असमर्थ होने से; तम्—उसको; परिहातुम्—छोड़ने के लिए; आतुरः—अभिभूत; कृच्छ्रम् ययौ—अत्यधिक पीड़ा अनुभव की; मूर्धनि—सिर पर; भर्तृ—अपने स्वामी के; पादुके—खड़ाओं को; बिभ्रन्—लेते हुए; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; ययौ—चला गया; पुनः पुनः—बारम्बार।

जिनसे उद्धव का अटूट स्नेह था उनसे बिछुड़ने से अत्यधिक डरते हुए, वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये और वे भगवान् का साथ छोड़ नहीं पाये। अन्त में, अत्यधिक पीड़ा का अनुभव करते हुए, उन्होंने बारम्बार भगवान् को नमस्कार किया और अपने स्वामी के खड़ाऊँ को सिर पर रख कर वहाँ से प्रस्थान किया।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत के अनुसार (३.४.५), जब उद्धव बदरिकाश्रम जा रहे थे, तो उन्होंने भगवान् की प्रभास यात्रा के विषय में सुना। पीछे मुड़ कर तथा कृष्ण के पीछे पीछे जाकर उन्होंने देखा कि यदुवंश के विनाश के बाद भगवान् अकेले थे। जब भगवान् ने पुनः कृपा करके (मैत्रेय के साथ जो अभी अभी पहुँचे थे) उपदेश दिया तो उद्धव को लगा कि उनका सत्य ज्ञान जागृत हो उठा है और तब भगवान् के आदेश से वे अपने रास्ते पर आगे बढ़ गये।

ततस्तमन्तर्हृदि सन्निवेश्य

गतो महाभागवतो विशालाम् ।

यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना

तपः समास्थाय हरेरगादगतिम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; तम्—उसको; अन्तः—भीतर; हृदि—अपने मन में; सन्निवेश्य—रख कर; गतः—जाते हुए; महा-भागवतः—महान् भक्त; विशालाम्—बदरिकाश्रम को; यथा—जिस तरह; उपदिष्टाम्—वर्णित; जगत्—ब्रह्माण्ड के; एक—एकमात्र; बन्धुना—मित्र द्वारा; तपः—तपस्या; समास्थाय—ठीक से सम्पन्न करके; हरेः—भगवान् के; अगात्—प्राप्त किया; गतिम्—गन्तव्य को।

तत्पश्चात् भगवान् को, हृदय में रखते हुए महान् भक्त उद्धव बदरिकाश्रम गये। वहाँ पर

तपस्या में रत होकर उन्होंने भगवान् के निजी धाम को प्राप्त किया जिसका वर्णन ब्रह्माण्ड के एकमात्र मित्र स्वयं कृष्ण ने उनसे किया था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार श्री उद्धव वैकुण्ठ-स्थित द्वारका लौट आये।

य एतदानन्दसमुद्रसम्भृतं
ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ।
कृष्णो न योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा
सच्छ्रद्धयासेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; एतत्—यह; आनन्द—आनन्द के; समुद्र—सागर; सम्भृतम्—संग्रहीत; ज्ञान—ज्ञान के; अमृतम्—अमृत; भागवताय—उनके भक्त से; भाषितम्—कहा गया; कृष्णो न—कृष्ण द्वारा; योग-ईश्वर—योगके स्वामियों द्वारा; सेवित—सेवा किया गया; अङ्घ्रिणा—चरणकमलों द्वारा; सत्—सही; श्रद्धया—श्रद्धा के साथ; आसेव्य—सेवा करके; जगत्—सारा संसार; विमुच्यते—मुक्त हो जाता है।

इस तरह उन भगवान् कृष्ण ने जिनके चरणकमलों की सेवा समस्त बड़े बड़े योगेश्वरों द्वारा की जाती है, अपने भक्त से यह अमृततुल्य ज्ञान कहा जो आध्यात्मिक आनन्द के सम्पूर्ण सागर जैसा है। इस ब्रह्माण्ड में जो कोई भी इस कथा को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, उसकी मुक्ति निश्चित है।

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं
निगमकृदुपजहे भृङ्गवद्वेदसारम् ।
अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्
पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

भव—भौतिक जीवन के; भयम्—भय को; अपहन्तुम्—हर लेने के लिए; ज्ञान-विज्ञान—ज्ञान तथा विज्ञान का; सारम्—सार; निगम—वेदों के; कृत्—रचयिता ने; उपजहे—प्रदान किया; भृङ्ग-वत्—मधुमक्खी की तरह; वेद-सारम्—वेदों का सार; अमृतम्—अमृत; उदधितः—समुद्र से; च—तथा; अपाययत्—पिलाया; भृत्य-वर्गान्—अपने अनेक भक्तों को; पुरुषम्—भगवान् को; ऋषभम्—महानतम; आद्यम्—आदि जीव; कृष्ण-संज्ञम्—कृष्ण नामक; नतः—सिर झुकाता; अस्मि—हूँ।

मैं उन भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ जो आदि तथा समस्त जीवों में महानतम हैं। वे वेदों के रचयिता हैं और उन्होंने अपने भक्तों के भौतिक जगत के भय को नष्ट करने के लिए, मधुमक्खी की तरह समस्त ज्ञान तथा विज्ञान के इस अमृतमय सार का संग्रह किया। इस तरह उन्होंने अपने अनेक भक्तों को आनन्दसागर से यह अमृत प्रदान किया है और उनकी कृपा से उन्होंने इसका पान किया है।

तात्पर्य : जिस तरह मधुमक्खी फूल को क्षति पहुँचाये बिना अमृत चूस लेती है, उसी तरह श्रीकृष्ण वैदिक विकास की विस्तृत प्रणाली को विचलित किये बिना, समस्त वैदिक ज्ञान का सार काढ लेते हैं। दूसरे शब्दों में, श्रीकृष्ण स्वयं को वैदिक ज्ञान का लक्ष्य स्थापित करते हैं। वे प्रारम्भिक निकृष्ट विधियों को जो स्थूल भौतिक व्यक्तियों पर लागू हों तनिक भी विनष्ट नहीं होने देते। श्री शुकदेव गोस्वामी समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हुए समापन करते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के “भक्ति-योग” नामक उन्तीसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।